P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-11* (Supplementary Issue) July- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीयता की पहचान

हबीब खान
सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग,
राज. बाँगङ महाविद्यालय,
डीडवाना

सारांश

भारत की मूल पहचान (भारतीयता) आज एक देश की सामान्य विशेषताओं को सूचित करने के लिए प्रयुक्त शब्द नहीं है। यह शब्द कई अन्य सन्दर्भों में भारतीय यथार्थ को दूसरों के सम्मुख भारतीय होकर प्रस्तुत होना है। मनुष्य को उसकी साधारण स्थिति में पहचानना, भारतीय संस्कृति की विराटता को भारतीय मानस को बहुवर्णाचरित्र को समझना, सौन्दर्य के प्रति अनियंत्रित मोह तथा संस्कृति के प्रति जीवन को समग्रता में पहचानने का दृष्टिकोण भारतीय अवधारणा को समझने के औजार है। जब राजनेता भारतीयता की बात उठाते हैं उनका मन्तव्य होता है कि अन्य लोग भारतीयता को कलंकित कर रहे है। बुद्धिजीवी लोग उसका सम्बन्ध संस्कृति से जोडते है। वर्तमान में पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति का आतंक हमारी संस्कृति पर है जिससे सांस्कृतिक संकट पैदा हो गया है। हमारी व्यवस्था में पश्चिम की शिक्षा प्रद्धति, प्रशासन पद्धति, राजनीतिक व्यवस्था, अर्थतंत्र और प्राविधिकी का प्रसार होने से हमारा जीवन अप्रभावित नहीं रह सकता, लेकिन हमारी संस्कृति की विशेषता रही है कि वह आमूल कभी नहीं बदली। उसने बाह्य प्रभावों को आत्मसात कर अपने अनुरूप ढाला है। तमाम विविधताओं और परिवर्तनों की मूलभूत एकता और परम्परा की एकरूपता ही भारतीयता की आधारभूत विशेषता है।

पुरातत्त्व शास्त्री भी भारतीयता की सांस्कृतिक परम्परा के प्रवाह की निरन्तरता को स्वीकार करते है। 5000 साल पुरानी संस्कृति की विशेषताएँ आज भी भारतीयता जीवन मे देखने को मिलती है। सिन्धु घाटी के मकानों की छतों से बरसात के पानी के निकलने की व्यवस्था हेतु पनाले, स्त्री पुरूष दोनों के कानों में बालियाँ, पशुओं के विभिन्न प्रकार के चिन्हों की गुदाई, ताबीजों पर सांकेतिक निशान, मांगलिक अवसरों पर स्वस्तिक का चिह्न घरों पर अंकित किया जाता था, वह आज भी भारतीय समाज मे देखा जा सकता है। जानवरों को बुरी नजर से बचाने के लिए आज भी सिंध के मुसलमान स्वस्तिक के निशान का प्रयोग करते हैं। भारतीय लोग उत्साह और उल्लास को अधिक महत्त्व देते हैं, इसलिए शायद बुद्व का दुखवाद को व्यापक स्वीकृति न मिल सकी। सहिष्णुता, उदारता, अनासक्ति, सर्वभूत मैत्री और आध्यात्मिकता भारतीयता के लक्षण है। धर्म अनुयायियों, पूजा पद्धतियों एंव दार्शनिक विचारधराओं में टकराहट होती रही हैं, मगर अपनी स्थापनाओं के लिए किसी को सूली पर नहीं चढ़ना पड़ा है। हमारे देश की बहुलता की परम्पराओं के रक्षक वे तथाकथित निरक्षर लोग हैं जिन्होनें परम्पराओं को लोक में जिन्दा रखा हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी विद्वानों ने भारतीयता पर विचार किया है। अनेकता मे एकता विश्वकल्याण की भावना, ग्रहणशीलता, चिन्तन की स्वतंत्रता गुणों के रूप में चिन्हित किए है। भारतीयता को हम अपने कालजयी साहित्य और सांस्कृतिक धरोहर से ही पहचान सकते हैं। भारतीयता मूल से कटकर एकाकी बनकर पृथक चलने मे नहीं, वरन समग्र के साथ विवेक का प्रयोग कर पुरातन को आधुनिक रूप से प्रस्तुत करने में है।

मुख्य शब्द : माधवी, भीष्म साहनी, स्त्री जीवन।

प्रस्तावना

ब्रिटिश उपनिवेशवाद से पीडित संसार ने दूसरे विश्व युद्व के बाद राष्ट्रीय स्वाधीनता पाना शुरू किया । स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद मानवीय चेतना ने नया मोड़ ले लिया और स्वंतत्रता के साथ समता की बात जुड़ने लगी। आर्थिक विकास के साथ सांस्कृतिक स्वायत्तता की बात भी जरूरी माने जाने लगी। संस्कृति पर पुनर्विचार किया जाने लगा। संस्कृति परम्परागत आत्मछवियों मे कमी होने पर भी हार नहीं मानती और दुराग्रह करती है। इस परम्परागत आत्मछवि की बुनियाद जब हिलती है जब वैज्ञानिक विवेक के सहारे नये

अनुसंधान होंते है और इतिहास दृष्टि में परिवर्तन होता है। जाता है तब उपेक्षित एवं पीडित वर्ग इतिहास के पन्नों मे नाम दर्ज कराने लगता है और सांस्कृतिक स्वरूप भी बदलने लगता है। तब जरूरी होता है बुनियाद की तलाश। बुनियाद की तलाश किसी अवधारणा को मूल से देखने की दृष्टि है। अमेरीकी नीग्रो अपने इतिहास का प्रारम्भ दासता से नहीं मानते, वे अपना सम्बन्ध पुराने महाद्वीप से आये पूर्वजों से जोड़ते हैं। भारतीय अपना इतिहास आर्यो के आगमन से नहीं वरन् प्राचीन सभ्यताओं से मानते हैं। उनकी परम्पराओं और विचारधाराओं से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। इस्लाम देश का दावा करने वाला पाकिस्तान कृष्ण की मुरली और गोपियों का रास और गंगा की पावन धारा के सम्मोहन को भूल सकता है? वंहा का बुद्विजीवी अपना सम्बन्ध अरब की संस्कृति में नहीं भारतीय उपमहाद्वीप की सभ्यता मे अपने स्थान को समझना चाहता है। इन्डोनेशिया का एक सबल बौद्विक हिन्दुओं और बौद्धों की परम्पराओं से अपना सम्बध जोड़ता है। जड़ों की खोज एक बुनियादी सवाल है। इसके पीछे जातीय स्मृतियों का आग्रह और नए इतिहास बोध की माँग रहती है। इतिहास पर सदा सत्ता एंव प्रभावशली लोगो का वर्चस्व रहा है और उनके द्वारा उसे बदलने की बराबर कोशिशें होती रही है। इस प्रकिया मे कई बार विकृतियॉ पैदा हो जाती है और उनकी इच्छा अनुसार बदलाव कर दिया जाता है जिससे दिशा भ्रम का खतरा उत्पन हो जाता हैं और छद्म इतिहास लिख दिया जाता है। ऐसे मे जरूरी हो जाता है कि इतिहास का अध्ययन वैज्ञानिक विवेक के साथ समग्रता में देखा जाये और तथ्यों के सहारे जड़ों तक पहुँचने की कोशिश की जाये। दूसरे, असुविधाजनक सत्यों से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता है। इस्लाम के जोश मे यदि मलेशिया अपनी हिन्दू विरासत भूलता है तो ऐतिहासिक दृष्टि से दरिद्र ही होगा। तीसरे, जातीय स्मृतियों के साथ जातीय दुराग्रह और द्वेष भी जुड़ जाते है ऐसे मे द्वेष एवं घृणा का पक्ष याद रहता है, प्रेम ओर सुखद प्रंसग भुला दिए जाते है। जातीयता और उन्माद इतिहास दृष्टि के दुश्मन हैं। इनका निराकरण अथवा बचे बिना हम बुनियाद (जडों) तक नहीं पहुँच सकते हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

शोघ पत्र में भारतीयता की पहचाान के लिये, निम्नलिखित उद्देश्य को रखे गये हैं :

1. भारत की परम्पराओं का ज्ञान करना।
2. सभ्यता–बोध एवं इतिहास–दृष्टि का अध्ययन करना।
3. समग्र जीवन का मूल्याकंन एवं विविध आयामों पर दृष्टिपात।
4. पुरातन से सारतत्त्व ग्रहण करना (वैज्ञानिक विवके का प्रयोग करते हुए)।
5. भूमण्डलीयकरण एवं वैश्वीकरण के दौर में भारतीयता की रक्षा करना ।

भारतीयता की अवधारणा

समसायिक यथार्थ से जुड़े बिना अवधारणओं को नहीं समझा जा सकता है। भारतीयता एक सांस्कृतिक अस्मिता है। भारतीयता की पहचान अस्मिता की पहचान सामाजिक इतिहास को समझने के लिए जनचेतना और उसकी अभिव्यक्ति को जरूरी मान लिया है। अज्ञेय के अनुसार, 'अस्मिता का पहचानने के अनिवार्यतः दो अवसरों पर विशेष महसूस होती है। पहला इस अस्मिता की पहचान की और हमारा ध्यान तब तक नहीं जाता जब तक किसी संस्कृति सभ्यता का सहज विकास हो रहा हो। तब तक इस तरह की आत्मचेतना और उसको

लेकर प्रश्न कि हम अपनी अस्मिता की कोई परिभाषा करें। , जब दूसरी सभ्यता से भारत की इस तरह की टकराहट हुई तो उससे यह प्रश्न उठा कि हम कौन थे,क्या हो गए है? तब यह सवाल उठा कि भारतीयता किस चीज मे निविष्ठ रही है और किसके आधार पर हम आत्म सम्मानपूर्वक उन सब चीजों के मुकाबले खड़े हो सकते हैं। जिनका मुकाबला हमें करना है और तभी यह प्रश्न भी बार–बार उठता रहता है कि भारतीयता या इस भारत जाति का जो समग्र अनुभव रहा उसकी उपलब्धि क्या है?दूसरा अवसर उन परिस्थितियों की मुक्ति में है जिससे भारतीयता का अवस्थिति बोध निर्मित होता है।'[1]

भारतीयता की तलाश वास्तव में उस भारत की खोज है जो अतीत में था और भविष्य की संभावनओं का भी है। हमने भारत में कट्टरतावादी और उदार सहिष्णुतावादी शक्तियों के बीच उस क्रूर संघर्ष को देखा है जिसमें एक कट्टर हिन्दू नाथूराम गोडसे ने दूसरे उदार एवं सनातनी हिन्दू की प्रार्थना सभा में हत्या कर दी थी। भारतीयता एक मानसिक मनोदशा है। इसे समझने के लिए भारतीय मानस को समझना जरूरी है किन स्थितियों में भारतीय मानस एकता, भेदभाव और सन्तुलित व्यवहार करता है इसकी गहराई से खोज की जरूरत है। इस खोज का तात्पर्य पुरातन की पुनर्रचना करना है। कालिदास ने अपने अनुभव से कहा था कि पुराना जितना भी है , वह सब काम का नहीं होता । पुराने में से चयन का काम दुसाध्य है। हर व्यक्ति अपनी परिस्थिति, ज्ञान, विवेक अनुभव, संस्कार और स्वार्थ के अनुसार चयन करता है। जब विवेकानन्द कर्मयोग का आदर्श ढूढते है तो सम्पूर्ण संसार में अकेले महात्मा बुद्ध ही सच्चे कर्मयोगी नजर आते है। सर्वश्रेष्ठ दर्शन का प्रचार करते हुए भी इस महान दार्शनिक के ह्रदय में क्षुद्रतम प्राणी के प्रति भी गहरी सहानुभूति थी और फिर भी उन्होंने अपने लिए किसी प्रकार का दावा नहीं किया।

प्रत्येक संस्कृति, समूह ,समुदाय और राष्ट्र की अपनी छवि होती है। एक छवि वह जिसे वह स्वयं अपने बारे में विकसित करता है, और दूसरी वह जो उसे दूसरी संस्कृतियाँ देती है। आत्मछवि का बाहरी रूप अधिक सकारात्मक होता है जो दुनियॉ को दिखाने के लिए होता है। आत्म छवि का आन्तरिक अभिमत सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों से बना हो सकता है। आत्मछवि स्वयं को सत्य प्रमाणित करने वाली होती है। जिसके अनुसार मानकिकता और व्यवहार बनने लगता है। कई बार पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर प्रदत्त छवि को प्रयत्नपूर्वक गलत प्रमाणित करने की कोशिश की जाती है । अमेरिकी काले लोग, 'काले सुन्दर है' आन्दोलन चलाते है और दूसरी और अपने आपसी झगडे में 'तू गन्दा नीग्रो' गाली

देते है। भारत की एक छवि नहीं, अनेक छवियाँ है। हमारी आत्मछवि में अनेक परिवर्तन हुए है। हम बाहरी दुनियॉ को जो चेहरा दिखाना चाहते है उसमें हमारा खुद का विश्वास नहीं है। भारतीयता की भावना के सम्बन्ध में एकमत सहमति विकसित नहीं कर पा रहे है। हमारे प्राचीनतम पूर्वज अनेक जनजातीय कबीले थे जिसमें कुछ का संबंध अफ्रीकी, न्रीगो, कुछ का आस्ट्रेलिया के आदिवासी समूह से और कुछ का सम्बन्ध दक्षिण–पूर्वी एशिया के मंगोलियाड शाखा से। कहॉ से आये ? किसने क्या किया? और क्या लिया? इस पर विचार करने से आधिक महत्वपूर्ण है कि हम इन पूर्वजों से नाता (सम्बंध) क्यों स्वीकार नहीं कर पाते हैं?

सिन्धुघाटी सभ्यता की लिपियों का विश्लेषण से विद्वानों की धारणा बनी है कि उनकी भाषा अपनी संरचना में द्रविड मूल की मानी जाती है। भारतीय सभ्यतया में द्रविड भाषी समुदायों की देन का सही आकलन अभी तक नहीं हो सका है। आर्य भाषा बोलने वाले कबीलों का आना 1500–1200ई. पू. में प्रारम्भ हुआ। अपने दार्शनिक चिन्तन और काव्यसृजन की प्रतिभा के कारण यहाँ के लोगों कें साथ एकीकरण आसान कार्य नहीं थे। इन लोगो के साथ लम्बे सघर्ष के बाद घृणा की दीवारें टूटी और सास्कृतिक संविलयन प्रारम्भ हुआ। आर्यों के अनेक देवता गौण हो गये और कुछ हिन्दू देव परिवार मे प्रतिष्ठित हुए। लम्बे अन्तराल तक भारत का आकर्षण कई समूहों को इस धरती पर खींच लाया। अपनी अपनी आस्मिता के साथ यूनानी, शक, कुषाण, आभीर, गुर्जर और हूण आए। इन सबने कुछ समय तक स्वंतत्र सांस्कृतिक व्यक्तित्व बनायें रखा। फिर सामान्य भारतीय समाज मे मिल गये। कविवर रविन्द्रनाथ ठाकुर की 'भारत तीर्थ' कविता के शब्द भारतीयता को समझने के लिए बहुत ही उपयोगी है, 'कोई नहीं जानता किसकी पुकार पर मानव जातियों की कितनी धाराएं प्रबल वेग से बढती हुई इस महामानव समुद्र में विलीन हो गई। यहां पर आर्य–अनार्य, द्रविड., मंगोल, शक, हूण, पठान और मुगल आये और आकर एक देह में विलीन हो गए। पश्चिम ने आज द्वार खोला है। वहाँ से भी लोग उपहार लेकर आ रहे है । वे भी खाली हाथ नहीं लौटेगें। देंगे और लेंगे, मिलेंगे और मिलायेंगें। भारत की इस महामानव समुद्र के तट पर जो लोग युद्ध का विपुल मार्ग भेदकर आये हैं वे आज मेरे भीतर विराज रहे है। कोई भी दूर नहीं है सब एक हो गये है इसलिए आज मेरे रक्त में उसका विचित्र स्वर ध्वनित हो रहा है। हे मेरी रूद्रवीणा! अच्छी तरह बजो। आप जो भी घृणा के कारण दूर खडे. है उनका बन्धन नष्ट हो जायेगा। वे भी आयेंगे और घेरकर खड़े होंगे। भारत के इस महामानव सागर के तीर पर।'[2] (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का अनुवाद)

सिन्धु घाटी सभ्यता पर विचार करने वाले मैकाय की कसौटी भी सांस्कृतिक परम्परा के प्रवाह की निरन्तरता है। सिन्धुघाटी सभ्यता की बहुत सी समानता जीवन दर्शन और वस्तुओं में पायी जाती है। उनके पक्के मकानों की बनावट, मांगलिक संकेत, काम में आने वाले बर्तन, रहन–सहन का ढंग आज भी भरतीय समाज से समानता रखते है। डॉ. रामविलास शर्मा ने सही लिखा है, 'भारत में पांच हजार या उससे अधिक वर्ष पहले जिस प्रथा का प्रचलन था, हिन्दुओं की वर्तमान रीति उसी का अवशेष है।'[3]

मध्यकाल में मुस्लिम आए। साथ मे मुस्लिम धर्म और विशिष्ट संस्कृति लाये। सूफी सन्तों ने भारतीय मुस्लमान और हिन्दुओं दोनो को स्वीकार किया। यहाँ इस्लाम स्वीकार किया यहाँ इस्लाम का भी भारतीयकरण हुआ। कई हिन्दुओं ने इस्लाम स्वीकार किया परन्तु उनकी सामाजिक बुनावट मे बहुत फर्क नहीं आया। जाति प्रथा विभिन्न रूपों मे बनी रही जो आज भी बनी हुई है। पंजाब के गांवो मे आज भी हिन्दू मुस्लिम और सिक्ख जाट मिल जायेगें। मध्यकाल के सन्तों ने कट्रता की सामाजिक व्यवस्था पर कई सवाल उठाये हैं, उनके सवालों मे लोक चित की निर्मलता और सहज संवेदना झलकती है। धार्मिक आडम्बरों की भर्त्सना की, आवश्यकता पड़ने पर विद्रोह का समर्थन किया। सन्तों की इन परम्पराओं ने सामाजिक तनाव को कम किया और सामाजिक सांमजस्य उत्पन्न करने मे सहायता की । मध्यकालीन सन्तों की वाणी या कविता जनपक्ष की कविता थी। गाँवो मे, उत्पीडितों अपमानितों अभिजनों के अहंकार का दुःख भोगते गरीबों की कहानी है। धर्मतंत्र पर बंधी व्यवस्था के बीच मनुष्य की आवाज को विलुप्त नहीं होने दिया। कट्र वर्णव्यवस्था, परमात्मा, परलोक पुनर्जन्म के निहित सिद्वातों को जन–मन से जोड़कर भयावाह नहीं बनने दिया। जैन–धर्म और बौद्व धर्म जैसी क्रांतिकारी विचारधाराओं का जन्म इसी के गर्भ से हुआ। सम्प्रदाय भी स्वंतत्र धर्म बन सकते है। भावनात्मक स्तर पर ,स्वंतत्र धर्म होने पर भी भारतीयता से अलग नहीं है। इनकी जड़े भारतीय चिन्तन की भावभूमि में है। भारतीयता संस्कृति के बारे मे विचार करने पर हमारा ध्यान आध्यात्मिक प्रकृति पर केन्द्रित रहता है। मानव जीवन के चार प्रमुख लक्ष्य –पुरूषार्थो मे अर्थ और काम का भी उतना ही महत्त्व है जितना धर्म और मोक्ष का है। सनातन की खोज भारतीय मनीषा से जुडी है। कट्रवाद भारत की धार्मिक परम्पराओं का मूल स्वर नहीं रहा है। भारत के अनेक संत कवियों ने सामाजिक विभोक्ष की अभिव्यक्ति और अन्याय के विरूद्व लडने का नया रास्ता बनाया। परम्पराओं के विकृत रूप पर पैने प्रश्न पूछे, गम्भीर शंकाए व्यक्त की, अपनी असहमति के शब्द कहे, विरोध की वाणी दी, धर्मान्धता का विरोध किया। राष्ट्रीय स्वंतत्रता संग्रम की भारतीय समाज के भावात्मक समाकलन की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका थी। स्वाधीनता को लक्ष्य बनाकर भारत ने अपने धार्मिक, क्षेत्रीय, जातीय विवादो को अस्थायी तौर पर भुला दिया। सभी धर्म के नेताओं को राष्ट्रीय नायकों का सम्मान मिला।

भारतीयता का समाजशास्त्र

समाजशास्त्रियों ने भारतीयता पर विचार किया तो पाया कि भारतीयता एक व्यापक शब्द है, जिसका सम्बन्ध समाज एवं संस्कृति से है, जो राष्ट्रीयता से जुड़ी है। राजसत्ता से ज्यादा राष्ट्रीय संकल्पना को अधिक महत्त्व दिया। इतिहासकार जब युग विशेष का विवेचन करते है तो संस्कृति के साथ स्थापत्य, शिल्प और संगीत आदि कलाओं का उल्लेख करते है चाहे वे किसी भाषा में

हो। राज्यों के मध्य जो आपसी सधर्ष होता था, वह सताघारियो का आपसी संघर्ष था राजाओं की जय–पराजय का प्रभाव जन और जनभूमि पर नहीं पड.ता था। धर्म भारतीय दर्शन में समाज को एक सूत्र में बांधने की बडी भूमिका निभाता है। सहिष्णुता और उदारता भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता रही। अशोक ने हिंसा छोडकर अहिंसा का मार्ग अपनाया। कनिष्क के सिक्कों पर हिन्दु, बौद्ध, इरानी और यूनानी देवताओं के चित्र मिलते है। गुप्त राजाओं ने वैष्णव एंव शैव धर्म अपनाये। कलिदास शैव थे परन्तु रघुंवश काव्य राम की विष्णु के रूप में प्रतिष्ठा में लिखा।

मध्यकाल में सूफी सन्तों की भावनाओं में उदारता मिलती है भाक्ति–आन्दोंलन में इस धारा का उद्देश्य बढते जातीय संघर्ष को समाप्त करना था। राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, टैगोर और महात्मा गांधी ने मानव धर्म के लिए कार्य किया। भारतीय मानस राष्ट्रीय संकट के समय एक हुआ है, विभिन्न धर्मावलम्बी होने पर भी अपनी इच्छा से धर्म अपनाने की स्वतंत्रता प्राचीन काल से रही है जो भारतीयता की निशानी है।

विश्वकल्याण की कामना (वसुधैव कुटुम्बकम) की धारणा भारतीयता का मूल मंत्र रहा है। इस भावना से प्रभावित होकर हेलियोडोरस यूनानी होते हुए भागवत धर्म स्वीकार करता है। यूनानी सिकन्दर नागार्जुन से वाद–विवाद कर बौद्व बन जाता है। हूण सम्राट मिहिरकुल शैव बन जाता है। भारतीय संस्कृति में दूसरों को ग्रहण कर आत्मसात करने की शक्ति रही है। विदेशी आक्रमणकारी भी यहॉ गुरूओं के शिष्य बन गए। वर्तमान में 179 भाषाएं , 544 बोलियां तथा 2000 जातियों को लेकर यह देश ग्रहणशीलता के बल पर विश्व की शक्ति बना हुआ है। भारत में विचारकों को स्वतंत्र चिन्तन के लिए कभी दण्डित नहीं किया गया और न ही बदनाम। संस्कृति का निर्माण स्वंतत्र चिन्तन से उत्पन सद्विचारों से हुआ है। संयुक्त परिवार प्रणाली भी भारतीयता का एक विशेष गुण रहा है जो प्राचीन काल से ही भारतीय समाज की शक्ति पुँज रहा है। वर्तमान में बदलती प्रवृत्ति पर रामधारी सिंह दिनकर ने सही लिखा है, 'हमारे आचरण की तुलना में हमारे विचार और उद्गार इतने उँचे है कि इन्हें देख कर आश्चर्य होता है। बातें तो हम शांति और अहिंसा की करते है मगर काम हमारे कुछ और ही होते है। सिद्वान्त तो हम सहिष्णुता का बघारते है लेकिन भाव हमारा यह होता है। कि सब लोग वैसे ही सोचे जैसा हम सोचते है। घोषणा तो हमारी यह है कि स्थितप्रज्ञ बनना अर्थात् कर्मो के प्रति अनासक्त रहना हमारा आदर्श है लेकिन काम हमारे बहुत नीचे के धरातल पर चलते हैं और बढती हुई अनुशासहीनता हमें वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में नीचे ले जाती है।'[4]

हिन्दी साहित्य एवं भारतीयता

सिद्ध, नाथ, जैन एवं रासो साहित्य, में मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है। सिद्व साहित्य में दर्शन, नाथ साहित्य में दया, सन्तोष, अहिंसा की महिमा का मण्डन किया गया है। जैन साहित्य में साधना, अपरिग्रह और अहिंसा तथा रासो काव्यों में वीरता और राष्ट्रीयता का स्वर अधिक मुखरित रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, 'आदिकालीन कवि धर्मिकता, ऐहिकता, वीर और श्रृंगार, ईश्वरत्व और मनुष्यत्व के द्वन्द्वों का समाहार करने में संलग्न दिखाई देता है।'[5]

मध्यकालीन साहित्य में आत्मविश्वास, आशावाद और आस्था की भावना स्थापित हुई है। मानव की क्षुद्रता, स्वार्थपरता, असत्यप्रियता , अर्थ–लौलुपता कामुकता की भर्त्सना की गई है। डॉ. नगेन्द्र लिखते है, 'इन सन्तों की सबसे बडी देन यह रही है कि उन्होंने मनुष्यत्व की भावना को आगे कर के निम्न वर्ग के लोगों में आत्म–विश्वास पैदा किया। और इस प्रकार आत्मगौरव का भाव जगााया।'[6] आधुनिक साहित्य में लोक भावना की प्रतिष्ठा हुई। मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा स्थापन के लिए साकेत, प्रियप्रवास जैसे महाकाव्य लिखे गए। मानवता के हित की बात मुखरित हुई है।

भारतीयता की पहचान : आधार

इतिहास दृष्टि

शासकों एवं युद्धों के इतिहास की उपयोगिता सीमित है। सांस्कृतिक उपलब्धियों की कालानुक्रम में बनाई सूची भी हमारी समझ को आगे नहीं बढ़ाती है। जनता की भूमिका जब तक इतिहास में रेखांकित नहीं होती है तब तक भारतीयता की समझ अधूरी रहेगी।

परम्परा–बोध

हमें परम्पराओं के अन्तरावलम्बन को समझना है उनका मूल्यांकन करना है। हम वर्तमान में जीते है मगर जड़ें हमारी अतीत में रहती है।

समग्र जीवन दृष्टि

हमें परम्पराओं को बेड़ी नहीं मानना चाहिए। वर्तमान का भविष्य को भूला देना घातक सिद्ध हो सकता है। ऐसा करना भावी पीढियों के प्रति उतरदायित्वहीनता की भावना होगी। इसलिए परम्पराओं को पुरातन, वर्तमान और भविष्य को ध्यान में रखकर विचार होना चाहिए।

वैज्ञानिक विवेक

परम्पराएँ जब तक ही उपयोगी है जब वह वैकल्पिक भविष्य में निर्माण में सहायक होती है। जीवन के बदलते आयामों के लिए ढालने में मददगार होती है। उन्हें बदला जा सकता है।

भारतीयता की पहचान

गौतम बुद्ध ने सही कहा था कि नाव नदी पार करने के लिए होती है कृतज्ञता भाव से उसे पीठ पर ढोना मूर्खता होगी। भूमण्डलीकरण और वैश्विक बाजारवाद के दौर में भारतीयता को पहचानना महाभारत के चक्रव्यूह में प्रवेश कर बाहर निकलने जैसा कठिन कार्य है। भारतीयता की पहचान के दो क्षेत्र प्रमुख है, एक सभ्यता का क्षेत्र और दूसरा संस्कृति का क्षेत्र। भारतीयता के यह दोनों रूप हमारी भाव बोध परम्परा में मौजूद है। जहाँ तक हमारी सभ्यता का सवाल है। दूसरों के अच्छे बुरे की आवाजाही आज से नहीं बहुत पहले से ही साफ–साफ देखी जा सकती है। सभ्यता का आदान प्रदान इतना पूर्ण और सगुण होता है जिनका साक्ष्य हमारी इन्द्रियाँ दे सकती है। उत्पादन पद्धतियों के बदलने से सभ्यता को रूपान्तरित होने को कोई नहीं रोक सकता है। हमारी वेषभूषा, खानपान, आमोद–प्रमोद के रंग–ढंग बदल रहे हैं। आधुनिक समय यूरोप और अमेरिका ने अपनी

सभ्यताओ के रंग मे उनको रंगा है जो अपनी सभ्यताओ की नहीं मिटने की गौरव गाथा गाते हुए नही थकते हैं। मनुष्य की विकास यात्रा विभिन्न सभ्यताओं को एक दूसरे के नजदीक लाने की भी यात्रा है। मनुष्य को भोगौलिक भिन्नता के बावजूद मनुष्यता की पहचान तो एक है। संस्कृति मनुष्य का अपना स्वायत्त क्षेत्र है इसमे प्रकृति के दखल–अन्दाजी बहुत कम है इसलिए मनुष्य ने उसे अपनी मनोदशा के अनुसार रची है। इस क्षेत्र भारतीय मनीषा ने रचा है वह उनका अपना है वही हमारी भारतीयता है। स्वाधीनता के बाद के नेतृत्त्व का बल केवल सभ्यता आधारित है इसलिए उसके भीतर की शक्ति का क्षरण हुआ है। इस कारण सभ्यता के क्षेत्र में भारतीयता का पक्ष कमजोर है।

संस्कृति का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र देश की भाषाएँ और उसमे लिखा जाने वाला साहित्य। किसी समाज की सांस्कृतिक परम्पराओं का ज्ञान उसकी अगली पीढी को उसकी भाषाओं के माध्यम से प्राप्त होता है लेकिन हमारी भाषाएँ पिछड़ रही है दूसरी भाषाओं का प्रभाव हावी हो रहा है। अंग्रेजी भाषा का प्रभाव पश्चिम सभ्यता के सहारे भारतीय समाज मे बढा है, जिससे हमारी सांस्कृतिक सुरक्षा का बल घटा है। पूँजी केन्द्रित सभ्यता अपना प्रहार करती है तब वह मनुष्य और श्रम को केन्द्र से हटाकर वस्तु और पूंजी की प्रभुत्ता को केन्द्र मे लाती है। आज सम्पूर्ण विश्व पूंजीवाद की गिरफ्त में है। इस वातावरण में भारतीयता की पहचान का उत्साह हमारी सभ्यतागत तनाव का नतीजा है। भारतीयता का तात्पर्य भारतीय मनुष्य की अपनी चिन्तन परम्परा, व्यवहार और सम्बन्ध भावना की पहचान से है लेकिन भारतीय मनुष्य एक समय और एक परिवेश में एक रूप नहीं रहा है। कभी वह सिंधु घाटी की सभ्यता का निर्माता है, कभी वेद उपनिषदों का द्रष्टा और कभी लौकिक ग्रंथ अर्थशास्त्र का रचानाकार। कौटिल्य की यह स्थापना क्रांतिकारी है कि मानवीय सभ्यता के केन्द्र में अर्थ है। सम्पूर्ण इतिहास यात्रा के किसी समाज के मनुष्य, विशिष्ट अपवादों को छोडकर देखी जाये तो सत्य कोटिल्य के पक्ष में ठहरता है। लेकिन जैन मुनियों ने अपरिग्रह का मंत्र देकर भोग की तुला को संतुलित कर दिया। हमारे यहाँ ऋषि चिन्तन की परम्परा आध्यात्मिक जीवन को सुन्दर बनाने के लिए है।

रामायण, महाभारत और कालीदास, भवभूति, भारवि का साहित्य जिस आदर्श को लेकर जीवनयापन की बात करता है उसमें भौतिकता निषेध नहीं है। भौतिकता के चिन्तन बराबर होते रहे है, लेकिन निवृत्ति मार्ग को हमारी पहचान बताया गया है। भारतीयता दर्शन मे मरने का अर्थ समाप्त होना नहीं हैं। वर्तमान जीवन की लम्बी यात्रा का एक पडाव है जो समाप्त होता है वह शरीर है। आत्मा कभी नही मरती वह अमर है। मनुष्य का जन्म होना ओर मरना चोला बदले जैसा है। जहां जीवन और मौत के प्रति यह दृष्टि हो वहाँ शोक के लिए अवकाश नहीं है। फलतः उत्सवप्रियता भारतीयता का प्रमुख लक्षण बनकर उभरा है। प्राचीन भारतीयता में जीवन मूल्यों का सृजक वह भारत है जो निष्काम कर्म को प्राथमिक महत्त्व देता है। भारत का यही रूप मध्यकाल के पूरे भक्ति आंदोलन को प्रभावित करता है। 19–20 शताब्दी के नवजागरण को प्रभावित करने वाला है।

विवेकानन्द, रविन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी इसी रूप से प्रेरणा करते है। यह सभी अपने अतीत के गौरव के गायक रहे है। इस प्रकार अतीत से वर्तमान तक सूत्र बद्धता बनी रहती है। आदिकवि वाल्मीकी ने जिसे मानव भाव के केन्द्र मे रखा वह करूणा का आदर्श दर्शन है। मध्यकाल के संतो में असंतोष की अभिव्यक्ति के साथ जीवन मूल्यों की स्थापना की छटपटाहट देखी जा सकती है। मध्यकाल में सबसे बडा सांस्कृतिक परिवर्तन यह होता है कि संस्कृति कि बागडोर संस्कृत भाषा से छिटककर किसानों, कारीगरों की लोक भाषा ब्रज, अवधि और गुजराती और मराठी के हाथों में आ जाती है राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की पहचान उस निष्काम कर्म योग के आधार पर की गई जो जाति, सम्प्रदाय, लिंग, भाषा आदि को ढहाकर नागरिकों की पहचान केवल मनुष्यता के रूप में करता था। आधुनिक जीवन मूल्यों में समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की पूरे विश्व में प्रतिष्ठा है। इन मूल्यों के बिना कोई राष्ट्रीय संस्कृति अपनी पहचान बनाये नहीं रख सकती है। इन मूल्यों के चलते ही उपनिवेशवाद खत्म हुआ है। लोकतंत्र का अस्तित्व हो सका है। आज पूँजीवाद की पोषक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की अर्थव्यवस्था सभी जगह प्रभावी है। विदेशी वस्तुओं के प्रति मोह बढ रहा है। हमारी भाषाएं और संस्कृति कमजोर पडती देख रहे है। इन सब से बचकर ही हम भारतीयता की रक्षा कर सकते है।

निष्कर्ष

भारत की आत्मा सनातन है। भारतीयता केवल एक भोगौलिक परिवृति की छाप नहीं एक विशिष्ट आध्यात्मिक गुण है। जो भारतीय को सारे संसार से पृथक करता है। भारतीयता मानवीयता का निचोड है। उसकी हदयमणि है, उसका सिर सावतंस है, उसके नाक का बेसर है।–(अज्ञेय)

भारतीयता भारतीय समाज की वह चितवृत्ति कि पहचान है जो समय के बदलाव और अनिश्चियों के बीच अपनी आस्थाओं और प्रतिज्ञाओं को नष्ट नहीं होने देती है। भारतीयता एक मनोदशा है। इसको समझने के लिए भारतीय जनता के मानस को समझना जरूरी है। विभिन्न सभ्यताओं से आकर बसे इस भू भाग के लोग यहाँ की संस्कृति में एकाकार हो गए। आज भी प्राचीन सभ्यताओं की साम्यता यहाँ के निवासियों में देखी जा सकती है। वेद उपनिषदों से मूल मंत्रों को ग्रहण कर साधु संतों की वाणी से निकलती हुई जातिगत भेदभाव को मिटाकर स्वतंत्रता संग्रम के समय राष्ट्रीय एकता के रूप में मुखरित हुई हैं। जातीयता के स्थान पर सार्वभौमिक राष्ट्रीय चेतना को जागृत करना होगा। बंगाली जातीयता ने इस्लामी पाकिस्तान को तोड दिया। हमें इससे सीख लेने की जरूरत है। बहुभाविक देश में वैचारिक एकता के लिए भाषायी अनुवाद को बढावा दिया जाना चाहिए। भारतीय उदात्त जीवन मूल्यों, पुरातन संस्कृति की अवधारणाओं, परम्पराओं, श्रेष्ट वैचारिक मान्यताओं को निजीकरण वैश्विकरण, उदारीकरण, भारतीय जन का विदेशी संस्कृति के प्रति मोह, क्षेत्रवाद, प्रान्तीयता,

साम्प्रदायिकता और आपसी संघर्ष से खतरा है जिसके प्रति भारतीयता जनमानस को सचेत करना है। भारतीयता की पहचान उसकी मौलिक सभ्यता एवं सांस्कृतिक विरासत की आन्तरिक ग्रहणशीलता से है। साहित्यिक स्तर पर साहित्य को मानवीय मूल्यों को धारण कर दूसरी संस्कृतियों के खतरों से बचाना है।

भारतीय अवधारणाओं के मिथ्याभ्रम (जगतगुरू, समाज व्यवस्था का आदर्श रूप, उच्च आदर्श, लक्ष्यों का खजाना) से निकालकर समसामायिक मूल्यों पर विचार करें। हमें जीवन दृष्टि में पाखण्डों और साम्प्रदायिकता का उन्मूलन कर सच्ची सामाजिक संस्कृति विकसित करनी होगी जिसमें आर्थिक विषमताएँ न्यूनतम हो और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए अधिकतम अवसर हो तब ही जनमानस में भारत और भारतीयता के लिए स्थान बन सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *तद्भव पत्रिका से उद्धृत (सम्पादक अखिलेश) अंक 23, लखनऊ, जनवरी 2011 (पृष्ट 19)*
2. *कला–प्रयोजन पत्रिका भाग 9 (पृष्ट संख्या 68–69)*
3. *डॉ. रामविलास शर्मा, पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984 (पृष्ट 35)*
4. *रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली 1956 (पृष्ट 16)*
5. *डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य एवं संवेदना का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986 (पृष्ट 27)*
6. *डॉ. नगेन्द्र, भारतीय साहित्य, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली 2004 (पृष्ट–186)*